International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 29-11-2022, Accepted: 15-12-2022, Published: 31-12-2022
Volume 8, Issue 6, 2022, Page No. 39-43

कबीर की सत्य शोधक जीवन दृष्टि के विविध आयाम

डॉ. सुरेन्द्र कुमार
सहायक प्रोफ़ेसर, (हिन्दी), राजकीय महाविद्यालय, भिवानी, हरियाणा, भारत

सारांश
महान् व्यक्तियों का उदय युग की परिस्थितियों के बीच से होता है और ऐसे महापुरुष उन परिस्थितियों से खुद प्रभावित न होकर संघर्षरत रहते हुए अपने आचार–व्यवहार से उनको तदनुसार बदलने की सामर्थ्य रखते हैं। ऐसे ही युग पुरुषों की श्रृंखला की एक कड़ी सन्त कवि कबीरदास हैं। उनके विचारों और कार्यों का प्रभाव वर्तमान पर भी परिलक्षित होता है। कबीर धर्मगुरु और समाज के नेता थे लेकिन समय–समय पर विभिन्न विद्वानों ने कबीर के प्रति एकांगी दृष्टिकोण अपनाकर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को बहुत बड़ी ठेस पहुँचाई है। कबीर तो समन्वय के साधक और मानवता के पोषक थे। कबीर में सूफीमत, वेदांत, रहस्यवाद, नारी–निंदा जैसी अनेक बातें हैं, जैसे, संसार की असारता पर जोर, मायावाद आदि का वर्णन, पर ये अनेक विकास की मंजिलें हैं। विरोधाभासों वाले व्यक्तित्व के धनी कबीर जिस युग में पैदा हुए थे, वे उस युग से बहुत आगे निकल चुके थे। वे सामाजिक व सांस्कृतिक क्रांति के नायक थे। 'अपना मस्तक काटकर बीर हुआ कबीर' (कबीर शब्द का पहला अक्षर 'क' जो मस्तक समान है, काट दिया जाए तो 'बीर' शब्द बचा रहता है) संत दादू दयाल की कबीर की प्रशंसा में यह उक्ति सर्वांशतः उपयुक्त है, यह उनके क्रांतिधर्मी व्यक्तित्व को प्रखरता से उजागर करती है।

मूल शब्दः कबीरदास, समकालीन, गृहस्थ, निस्सारता, कर्मकांड, अद्वैतवाद, सधुक्कड़ी, रहस्यवाद, निर्गुणिया, दार्शनिक, व्यंग्योक्तियाँ, आदिनाद, नवजागरण, अक्खड़ता, फक्कड़ता, अस्पर्श्य, वन्दनीय, कामिनी

कबीर सम्बन्धी ऐतिहासिक व साहित्यिक तथ्य

महान् व्यक्तियों का उदय युग की परिस्थितियों के बीच से होता है और ऐसे महापुरुष उन परिस्थितियों से खुद प्रभावित न होकर संघर्षरत रहते हुए अपने आचार–व्यवहार से उनको तदनुसार बदलने की सामर्थ्य रखते हैं। ऐसे ही युग पुरुषों की श्रृंखला की एक कड़ी सन्त कवि कबीरदास हैं। उनके विचारों और कार्यों का प्रभाव वर्तमान पर भी परिलक्षित होता है। कबीर के जन्म और मृत्यु के विषय में अधिकांश बातों का मुख्य आधार जनश्रुतियाँ और अनुमान हैं। डॉ. हंटर ने कबीर का जन्म संवत् 1434 तथा रेवरेंड वेस्टकाट ने संवत् 1497 माना है। कबीर के प्रधान शिष्य धर्मदास के द्वारा रचे गए एक पद के आधार पर भी कबीर की जन्मतिथि का अनुमान किया जाता है–

चौदह सौ पचपन साल गए। चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को। पूरणमासी तिथि प्रगट भए।।

इस आधार पर कबीर का जन्म संवत् 1455 की ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा चन्द्रवार (सोमवार) को हुआ, लेकिन पंचांग की गणना से संवत् 1455 की ज्येष्ठ पूर्णिमा को सोमवार नहीं है। अतः उक्त पद का अर्थ संवत् 1456 भी निकाला जा सकता है क्योंकि 'चौदह सौ पचपन साल गए' का अर्थ यह वर्ष बीत जाने के बाद संवत् 1456 के ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा भी हो सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी संवत् 1456 ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को ही कबीर की जन्मतिथि स्वीकार करते हैं। कबीर के आविर्भाव काल का निर्णय करने के लिए उपलब्ध सामग्री को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है– अन्तःसाक्ष्य, साम्प्रदायिक सामग्री तथा प्राचीन ग्रंथों और विद्वानों के अभिमत। "अन्तःसाक्ष्य की दृष्टि से उन्होंने केवल दो प्रसंगों– काजी द्वारा हाथी से कुचलवाने तथा लोहे की जंजीरों से बंधवाकर गंगा में डुबोने के प्रयत्न का वर्णन किया है। सिकंदर लोदी द्वारा किए गए अत्याचारों का जो वर्णन अनंतदास कृत 'कबीर परचई' में है, उससे इन उल्लेखों का पूर्ण साम्य है। कबीर का दूसरा अंतःसाक्ष्य है– उनके द्वारा जयदेव और नामदेव की महत्ता का वर्णन। यथा– 'गुरु प्रसादी, जैदेव, नामाँ। भगति के प्रेमी इनहीं है जाना।"[1] अतः इस आधार पर यही संकेत मिलता है कि कबीर सिकंदर लोदी के समकालीन थे तथा कबीर द्वारा 12वीं–13वीं सदी के इन दोनों संतों जयदेव और नामदेव का उल्लेख इस बात का प्रतीक है कि उनका आविर्भाव तेरहवीं शताब्दी के अंत और चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था। कबीर की जीवनी से सम्बन्धित मुख्य सामग्री श्री पीपा की वाणी, धर्मदास कृत भवतारण, श्री युगलानन्द रचित कबीर चरित बोध, नाभादास की भक्तमाल, अनंतदास कृत कबीर परचई आदि प्रमुख हैं। पीपा ने कबीर की आध्यात्मिक उपलब्धियों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। 'कबीर चरितबोध' में भी कबीर के आविर्भाव काल संवत् 1455 का स्पष्ट उल्लेख है। उक्त सामग्री के अतिरिक्त बील, हंटर, मेकालिफ, वेसकट, स्मिथ, भण्डारकर आदि प्रसिद्ध विद्वान भी कबीर को सिकंदर लोदी का समकालीन ही मानते हैं।

कबीर की मृत्यु के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मत भिन्नता है। अनंतदास कृत 'कबीर परचई' के अनुसार कबीर ने 120 वर्ष का पवित्र जीवन जिया था। संवत् 1455 (कबीर की जन्म तिथि) में 120 वर्ष जोड़ देने पर उनकी निधन तिथि संवत् 1575 ही आती है, जिसकी पुष्टि इस दोहे से भी होती है–

संवत् पन्द्रह सौ पछत्तरा, कियो मगहर को गौन।
माघ सुदी एकादसी, रलौ पौन में पौन।।

"परम्परा से प्रसिद्ध है कि कबीरदास का आविर्भाव सिकंदर लोदी के जमाने में हुआ था। उन्होंने स्वामी रामानंद से बचपन में ही दीक्षा ली थी और मरती बार मगहर को चले गए थे। मगहर में उनके तिरोहित होने का काल संवत् 1575 की अगहन सुदी एकादशी कहा जाता है।

सभी बातों का विचार करके बाबू श्यामसुंदर दास को यही सम्भव जान पड़ा है कि कबीर दास जी का जन्म संवत् 1456 में और मृत्यु संवत् 1575 में हुई होगी।"[2]

भक्त कबीर भक्ति आन्दोलन के प्रमुख नेता तथा रामानंद के सबसे प्रमुख शिष्य थे। उनके माता–पिता के सम्बन्ध में भी निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। प्रचलित दंतकथा के अनुसार कबीर एक ब्राह्मण विधवा का पुत्र था जिसने लोकलाज के डर से जन्म देने के बाद काशी स्थित एक तालाब के किनारे छोड़ दिया था। यह तालाब आजकल लहरतारा के नाम से जाना जाता है। अली अथवा नीरू नामक जुलाहा इस बच्चे को उठाकर अपने घर ले आया। नीरू और नीमा नाम के इस निःसंतान दंपत्ति ने उसका लालन–पालन किया तथा काजी की सलाह पर इस बालक का नाम 'कबीर' रखा गया। कबीर गृहस्थ थे। उनकी पत्नी का नाम लोई, पुत्र कमाल तथा पुत्री कमाली थी। कबीर की जुलाहा या कोरी नामक जाति अतीव बेवकूफ और नीच समझी जाती थी। "यदि यह अनुमान सत्य है तो दृढ़ता के साथ ही कहा जा सकता है कि कबीरदास जिस जुलाहा जाति में पालित हुए थे वह एकाध पुश्त पहले के योगी जैसी किसी आश्रम–भ्रष्ट जाति से मुसलमान हुई थी या अभी होने की राह में थी।"[3] कबीर उदार, संतोषी, निर्भीक, अहिंसक, सात्विक, निरपेक्ष, पाषाण–पूजा विरोधी, चरित्रवान व्यक्तित्व के धनी व समाज सुधारक थे। कबीर साक्षर नहीं थे। उनका ज्ञान सत्संग पर आधारित था। नाथ पंथ का प्रभाव उन पर नीरू परिवार की नाथपंथी आस्था के फलस्वरूप पड़ा था। उनका योग–ज्ञान नाथपंथी प्रभाव की ही देन है। कबीर की विचारधारा में योग और भक्ति का मिश्रण है। "इनका अधिकांश जीवन काशी में बीता था। उन्होंने स्वयं लिखा है– 'सकल जनम सिवपुरी गंवाया'। आपने आजीवन अपनी अध्यात्म वाणी से जनता के कल्याण का पथ प्रशस्त किया।"[4]

महाकवि कबीर निरक्षर होने के कारण उनके द्वारा कहे गए पदों को उनके शिष्य धर्मदास द्वारा लिखा गया था। ऐसी मान्यता है कि कबीर की रचनाओं की संख्या लगभग 60 मानी जाती है। कबीरपंथी सम्प्रदाय ने उनके नाम से एक ग्रंथ का संकलन किया है। यह इस सम्प्रदाय का सर्वाधिक मान्य ग्रंथ है। 18वीं शताब्दी में इसका प्रकाशन 'बीजक' नाम से हुआ जो कि साखी, शब्द, और रमैनी नाम से तीन भागों में विभक्त है। 'शब्द' कबीर के के पद हैं। बीजक के पदों में खण्डन–मण्डन की प्रवृत्ति, वेदान्त तत्व, पण्डित–मुल्लों को फटकार, रोजा, पूजा, हज, नमाज, व्रत, तीर्थाटन, मूर्ति पूजा आदि की निस्सारता तथा कर्मकाण्डों में अनास्था देखने को मिलती है। ये जीवन की वास्तविकता पर बल देते थे। इनके काव्य में शंकर के अद्वैतवाद, सूफियों के प्रेम और वैष्णव धर्म की भक्ति का समन्वय मिलता है। कबीर के काव्य में भावात्मक रहस्यवाद का पुट है। इन्होंने रूपकों और अन्योक्तियों द्वारा ज्ञान की बात कही है। वे आपबीती कहते हैं, स्वानुभूत सत्य को जैसा बन पड़े, कह देते हैं और यही उनकी मौलिकता है। वे कहते हैं–

'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी।'

कबीर की भाषा पूरबी है। उन्होंने स्वयं कहा है– 'बोली मेरी पूरब की', परन्तु इस पूर्वी भाषा में भी घाट–घाट का पानी मिला है। वह न शुद्ध ब्रजभाषा है, न शुद्ध अवधी। उसमें ब्रज, अवधी, बुंदेलखंडी, भोजपुरी, मगही, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती, खड़ी बोली आदि सभी का पुट है। "अनादर से इसे लोगों ने सधुक्कड़ी अथवा खिचड़ी भाषा भी कहा है। भाषा वैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय दृष्टि से कबीर की हिन्दी सधुक्कड़ी भाषा नहीं, हिन्दी जाति (नेशन) की जातीय भाषा का साहित्यिक रूप है। जिसे केवल ब्रज, अवध या भोजपुर के सीमित जनपदों में ही नहीं समझा जाता था बल्कि जो समस्त हिन्दुस्तान में समझी जाती थी।"[5] काव्य रचना कबीर का साध्य नहीं था, फिर भी अपने महान् संदेशों की अभिव्यक्ति के लिए काव्य और सधुक्कड़ी भाषा का सहारा लेना पड़ा था। कबीर आदि सन्त, धर्मगुरु, भाव प्रवण कवि तथा निर्गुण संतमत के प्रवर्तक थे।

समन्वय के साधक और मानवता के पोषक

कबीर धर्मगुरु और समाज के नेता थे लेकिन समय–समय पर विभिन्न विद्वानों ने कबीर के प्रति एकांगी दृष्टिकोण अपनाकर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को बहुत बड़ी ठेस पहुँचाई है। कबीर तो समन्वय के साधक और मानवता के पोषक थे। प्रारम्भ से ही लोगों ने कबीर को गलत समझा है। कबीर में सूफीमत, वेदांत, रहस्यवाद, नारी–निंदा जैसी अनेक बातें हैं, जैसे, संसार की असारता पर जोर, मायावाद आदि का वर्णन, पर ये अनेक विकास की मंजिलें हैं। वे धीरे–धीरे उनसे भी आगे बढ़ गए हैं। वे कितने बढ़ गए थे, यह समझना तब और भी अधिक आश्चर्य देता है, जब हम सोचते हैं कि वे आज से सैकड़ों बरस पहले थे। कबीर किसी एक वर्ग या विचारधारा विशेष का प्रतिनिधि नहीं था। जाति और धर्म से उसका मोहभंग अनायास ही नहीं हुआ था। उसे समाज की तथाकथित उच्चवर्णीय जातियों से जीवन के प्रत्येक मोड़ पर प्रताड़ना झेलनी पड़ी थी। लेखक ने उन सभी पहलुओं पर उदारतापूर्वक विचार किया है और अपनी मान्यता स्थापित की है। ऐसी मान्यता है कि कबीर पहले निम्न जातीय हिन्दू बनकर रहना चाहते थे, पर रामानन्द की दीक्षा के बाद वे जात–पात की ओर से संदिग्ध हो गए। वे पहले अवतारवाद मानते थे फिर निर्गुण की ओर झुके, फिर योगियों के रहस्यवाद और षट्चक्र साधना की ओर। बाद में वे सहज साधना में चमत्कारवाद से आगे बढ़ गए। अंत में तो वे एक नई भूमि पर पहुँच गए।

कबीर के सम्बन्ध में आलोचकों ने अनेक प्रकार की विवादास्पद बातें कही हैं। कोई कहता है, उनके जाति–पाति विरोधी विचार इस्लाम से प्रभावित हैं, तो कोई उन्हें सुने सुनाए ज्ञान की अटपटी वाणियाँ गाने वाला कहता है। ऐसे आलोचकों का कबीर के प्रति ईर्ष्या भाव यहाँ तक बढ़ गया है कि वे उसे अभारतीय तक कहने से भी नहीं चूकते। कुछ विद्वान उन्हें बड़बोला, अहंकारी, घमंडी और खंडन–मंडन की प्रवृत्ति वाला उग्र व्यक्ति मानकर उनका विरोध करते हैं। कोई उनकी बातों को बेसिर पैर की बातों की बेमेल खिचड़ी कहता है। ऐसे ही विद्वानों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी शामिल हैं। लेकिन डॉ. रांगेय राघव ने कबीर के प्रति विद्वानों के उक्त आलोचनात्मक दृष्टिकोण का खण्डन करते हुए उन्हें उच्च कोटि का दार्शनिक सिद्ध किया है। "कबीर इतिहास में एक उलझन बन गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ब्राह्मणवादी आलोचक थे। उन्होंने कबीर को नीरस निर्गुणिया कह दिया। वे कह गए हैं कि कबीर ने कोई राह नहीं दिखाई। कबीर ज्ञान को रहस्य में डूबाता था। साधारण जनता कबीर को समझ नहीं सकी। यह सब ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण है। अतः त्याज्य है। अवैज्ञानिक है।"[6] ऐसी बातें उन्हीं विद्वानों ने कही हैं, जिन्होंने कबीर के व्यक्तित्व, समय, जीवन–दर्शन और जीवन की विकास–प्रक्रिया की अनदेखी की है। कबीर सबका, सबके लिए था, सभी कबीर के लिए थे।

सामाजिक व सांस्कृतिक नवजागरण को समर्पित कबीर

भारतीय काव्य मनीषा के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व कोई दूसरा नहीं हुआ। वह अथाह शक्ति और विश्वास लेकर पैदा हुआ था और एक युग प्रवर्तक की दृढ़ इच्छाशक्ति उसमें समाहित थी। यही कारण था कि वे युग–प्रवर्तन करने में सफल हुए। विरोधाभासों वाले व्यक्तित्व के धनी कबीर जिस युग में पैदा हुए थे, वे उस युग से बहुत आगे निकल चुके थे। वे सामाजिक व सांस्कृतिक क्रांति के नायक थे। उन्होंने तत्कालीन समाज की विसंगतियों को उघाड़कर रख दिया था। कबीर समाज और धर्म में फैली जड़ता से कभी आँख मूँदकर खड़े नहीं हुए। वे सदैव

उसका विरोध करते रहे। वे बाहर–भीतर समान बने रहते थे। "कबीर निर्गुण के परे थे। कबीर ने जो राह दिखाई, वह मानवता को कल्याण की ओर ले जाने वाली थी। वे भारतीय संस्कृति के नाम पर भेदभाव वाले ब्राह्मणवाद को नहीं मानते थे। वे इस्लाम का विरोध करके भी उससे घृणा नहीं करते थे और उसे मुक्ति का पथ भी नहीं समझते थे। कबीर ने जनता का दलित जीवन देखा था, तुलसीदास की भाँति नहीं, एक जुलाहे की भाँति। वे सगुण ईश्वर को मानकर ब्राह्मणवाद के नियमों में बन्ध नहीं सके।"[7]

संसार में भटकते हुए जीवों को देखकर वे न कातर होते थे, न आँसू बहाते थे बल्कि और भी कठोर होकर उसे फटकार लगाते थे। कभी व्यंग्य करते थे, प्रहार करते थे–

मूँड मुँडाये हरि मिलै सब कोई लेउ मुँडाय।
बार–बार के मूँडते भेड़ ने बैकुण्ठ जाय।।

कबीर की ऐसी स्पष्ट व्यंग्योक्तियाँ झकझोर देने वाली थीं। कहने वाले के चेहरे पर कोई शिकन नहीं थी। उन्होंने बाहरी आडम्बरों का तीव्र विरोध किया था। भगवान के नाम पर पाखण्ड करने वाले ढोंगियों को उन्होंने आड़े हाथों लिया। ऐसे अवसरों पर वे उग्र, कठोर और आक्रामक तेवर दिखाते थे। नाथ जोगी उनके सामने नहीं आते थे। वे उनकी असांसारिकता को देखकर उसका मजाक उड़ाते थे क्योंकि नाथ जोगियों के जादू–टोने फीके पड़ने लगे थे। भीख पर पलने वाले मुफ्तखोर पाखण्डी साधुओं को कबीर ने खुलकर ललकारा था –

सती न पीसै पीसना, जो पीसै सो राँड।
साधू भीख न माँगई, जो माँगे वो भाँड।।

सत्य के उन्नायक

कबीर सत्य के उन्नायक थे। उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम दोनों की ही पाखंडी प्रवृत्ति को खरी–खोटी सुनाई। कबीर भले और बुरे की पहचान जानते थे। परम्परा से उन्हें कोई चिढ़ नहीं थी। वस्तुतः वे परम्परा के नहीं, संकुचित और अस्वस्थ परम्पराओं के विरोधी थे। अंधानुकरण करना उनकी प्रवृत्ति नहीं थी। लोक और वेद की प्रत्येक बात को 'पत्थर की लकीर' मानना उनके व्यक्तित्व के अनुरूप नहीं था। उसने गर्जन किया था कि इस देश में कोई हिन्दू और मुसलमान नहीं। उसने पुराने अहंकार और नए अहंकार, दोनों को समान रूप से खण्डित किया था। उसने कहा था, "सब मनुष्य समान हैं। उसका स्वर जागरण का स्वर था, जो वर्णों और सम्प्रदायों से मनुष्य की मुक्ति का निनाद था। कबीर के आदिनाद ने उच्च वर्णों की रूढ़ियों की दीवारों और विदेशियों की उठी हुई तलवारों को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया था और उसका प्रभाव इतना दीर्घगामी और दूरगामी हुआ था कि नीच और अछूत समझी जाने वाली जातियाँ, जो इस्लाम के अधिकारों की चकमक में मुसलमान हो गई थीं, उन्होंने अपनी पुरानी सत्ता को पहचाना, उन्होंने स्वीकार किया कि वे बिक गई थीं और वे जातियाँ पुनः कबीर के झण्डे के नीचे आने लगीं। इस प्रकार कबीर घर–घर में नई चेतना फैलाते रहे। कबीर की दृष्टि सदैव दीन–दुःखी पर रहती थी, जिसको कोई नहीं देखता था। उनकी सामाजिक व सांस्कृतिक नवजागरण की क्रांति की आग उजाले का त्यौहार बन गई थी। उनकी संस्कृति वर्ण, वर्ग, जाति व धर्म से ऊपर थी। उसने जहाँ हिन्दू, मुसलमान, जोगी, जैन, शाक्त और बौद्धों को नहीं माना, तब वहीं उसने मनुष्य के नव जागरण की नींव डाली।

सामंती संस्कृति के विरोधी

कबीर ने जीवन के हर स्तर पर सामंती संस्कृति का विरोध किया था और नई जन संस्कृति के मूल्यों की स्थापना की थी। उनकी आकांक्षा सामंती समाज–व्यवस्था के विरुद्ध समतामूलक समाज की थी। उसका आन्दोलन सभी वर्गों का व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन था, जिसमें मुक्ति के लिए छटपटाहट थी। इसके लिए कबीर ने यथार्थ पर उतरकर समाज की नींवों को ही बदलना चाहा था। वे तो गरीब थे, नीच ओर अछूत थे। उसके लिए उच्च वर्ग आदर्श नहीं थे, वह उच्चवर्गीय संस्कृति का मोह भी नहीं करते थे। उनके पास सीधी सादी भाषा थी। वह मानव को सर्वश्रेष्ठ मानते थे क्योंकि वे मूलतः मानव थे। कबीर ने तो भारत के सांस्कृतिक जन–जागरण की नींव डाली थी। वे सामाजिक क्रांति के अगुवा और जन–जीवन के सच्चे साझेदार थे।

धर्म के क्षेत्र में कबीर युग में विभिन्न मत–मतान्तर प्रचलित थे और उनके अनुयायियों के परस्पर विरोधी आचरणों की आपाधापी में वास्तविक धर्म का रहस्य जानना कठिन हो रहा था। उस समय एक ओर तो वेद विरोधियों ने ब्राह्मण–धर्म विरोधी भावनाओं को भड़का रखा था जबकि इस्लाम धर्म निम्न जातियों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। धर्म–स्थान व्यभिचार के अड्डे और धर्म के ठेकेदार वासना और हवस के शिकार थे।

विलक्षण और विद्रोही व्यक्तित्व के धनी कबीर

'अपना मस्तक काटकर बीर हुआ कबीर' (कबीर शब्द का पहला अक्षर 'क' जो मस्तक समान है, काट दिया जाए तो 'बीर' शब्द बचा रहता है) संत दादू दयाल की कबीर की प्रशंसा में यह उक्ति सर्वांशतः उपयुक्त है, यह उनके क्रांतिधर्मी व्यक्तित्व को प्रखरता से उजागर करती है। कबीर मध्यकाल के सबसे बड़े क्रांतिद्रष्टा एवं रूढ़ि विरोधी थे। वे लोक और वेद दोनों की रूढ़ियों को ही अस्वीकार कर देते थे और अपने अनुभव के आधार पर जीवन सत्य का शोध करते थे। हिन्दी साहित्य में मार्मिक अनुभूति, उत्कृष्ट अभिव्यक्ति के स्वामी, परमेश्वर से सीधे तारतम्य से लेकर 'भोगे हुए सत्य' की गहरी बात कहने वाले बहुत से कवि मनीषी हुए, पर कबीर जैसा युग–व्यवस्था में विद्यमान पाखण्ड और कट्टरवाद को पूरी ईमानदारी और दृढ़ता से चुनौती देने वाला कोई दूसरा दिखाई नहीं देता। कबीर ने धर्म, समुदाय, परम्परा, रूढ़ियों की संकीर्णता और सामाजिक विडम्बनाओं से जीवनपर्यन्त संघर्ष किया और निर्भीकता के साथ दो टूक शब्दों में धर्म के ठेकेदारों को खरी–खोटी सुनाकर आड़े हाथों लिया। कबीर बुराई को देख कर चुप रहना नहीं जानते थे। ढोंगियों से उन्हें चिढ़ थी। बहुत से लोग मन्दिर में बैठे माला जपते हैं, मुँह से राम–राम करते हैं, छुआछूत करते हैं, पर हिंसा भी करते हैं। 'मुँह में राम और बगल में छुरी' वाली ये बातें उन्हें पसन्द नहीं थीं।

कबीर अधार्मिक अथवा नास्तिक नहीं थे। वे घट–घटवासी परब्रह्म को सर्वत्र देखते थे और खुद भी उसी लाली में रंग जाते थे। झूठे ज्ञान, गर्व, पांडित्य, दंभ की उन्होंने बखिया उधेड़ दी थी–

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पण्डित हुआ न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पण्डित होय।।"

कबीर ने हिन्दू और मुसलमान दोनों के पाखण्डों का तीव्र विरोध किया था। वे अच्छा–बुरा, खरा–खोटा जो बन पड़ा कह दिया, उससे भले ही किसी के दिल को चोट लगे या मर्रहम। डर नाम की कोई चीज उन्होंने कभी अनुभव नहीं की थी, तभी तो कबीर यह कहने का साहस रखते थे–

"अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करै बड़ाई
गागर छुअन न देई।
वेस्या के पायन तर सोवै
यह देखो हिन्दुआई।

मुसलमान के पीर औलिया
मुरगी मुरगा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं
घरहिं में करैं सगाई।"

कबीर जैसे फक्कड़राम कभी किसी के धोखे में आने वाले नहीं थे। आजीवन मिथ्याभिमान के विरुद्ध अक्खड़–फक्कड़ कबीर का हृदय सबके लिए प्रेम से भरा था। वह तो मेहनत की कमाई पर पलने वाला आदमी था। दलित जात भी, कुल भी, धनहीन परन्तु अपराजित था। वह पग–पग पर बढ़ा और फिर दीपक से दीपक जलाता चला गया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "कबीर की यह घर फूंक मस्ती, फक्कड़ाना लापरवाही और निर्मम अक्खड़ता उनके अखण्ड आत्मविश्वास का परिणाम थी। उन्होंने कभी अपने ज्ञान को, अपने गुरु को और अपनी साधना को सन्देह की नज़रों से नहीं देखा। अपने प्रति उनका विश्वास कभी भी डिगा नहीं।"[8] कबीर के विद्रोही तेवर देखकर भंग घोटते, सुलफा पीते जोगी और मुफ्तखोर साधु अपने चिमटे बजाने लगते थे। किन्तु कबीर कभी डरा नहीं क्योंकि वह फक्कड़ था, अक्खड़ था, निडर और निर्द्वन्द्व था तथा लोगों की भीड़ उसे देखकर विह्वल हो जाती थीं। कबीर विद्रोही भी ऐसा था, जिसने सुल्तान सिकंदर लोदी को भी स्पष्ट शब्दों में चेता दिया था कि मैं तुम्हारी तेग से डरने वाला नहीं हूँ। उसने अन्याय के सामने कभी सिर नहीं झुकाया। वे मन के बादशाह थे। उनकी निर्भीकता का आधार उनकी फक्कड़ता ही थी। उन्होंने अपनी आवश्यकताएँ बहुत कम कर ली थीं। तभी तो उन्होंने कहा था–

"चाह गई चिन्ता गई, मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, सोई साहंसाह।।"

"ऐसे थे कबीर। सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचण्ड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वन्दनीय। वे जो कुछ कहते थे, अनुभव के आधार पर कहते थे इसलिए उनकी उक्तियाँ बेंधने वाली और व्यंग्य चोट करने वाले होते थे।"[9]

विद्रोही व्यक्तित्व के धनी

कबीर का चरित्र इतना विशाल है कि ऐसे अनेक आलेखों का समस्त विवेचन भी ऐसे युग प्रवर्तक के लिए बहुत छोटा पड़ जाता है। उनके चरित्र के ऐसे अनेक पहलू हैं जो अभी तक के विवेचन से अछूते रहे हैं। एक विद्रोही व्यक्तित्व के धनी के रूप में उनकी पहचान भारतीय समाज में आज तक बनी हुई है। ''कबीर ने योगियों के परिवार–विरोध से संघर्ष किया, पण्डितों के शोषण और छुआछूत को तोड़ा, मुस्लिम शासक का दमन उखाड़ने की चेष्टा की, मुस्लिम पुरोहित वर्ग की लोभ–लूट की भावना को जनता में खोला, महंतों के आडम्बरों को चुनौती दी, साधुओं को पराया माल उड़ाना बुरा बताया, गृहस्थ बनकर हाथ से कमाकर खाने को ही सर्वश्रेष्ठ बताया और भारतीय संस्कृति से प्रेम का नारा लगाया।.... अंधविश्वास से लड़े, उन्होंने हिन्दू और मुस्लिम जनता को हिन्दू और मुस्लिम उच्च वर्गों से अलग देखा। भक्ति के माध्यम से उन्होंने ईश्वर को जनता के पास पहुँचाया और जब उच्च वर्ग हत्या, रक्तपात, लूटपाट, ईर्ष्या और पाप में डूबे हुआ था, जन समाज को प्रेम का संदेश दिया।"[10]
जब–जब कबीर की चर्चा होती है तो उन्हें 'नारी निन्दक' कहकर उनकी गरिमा और महिमा को आघात पहुँचाया जाता है किन्तु जो नारी को माया–रूप मानते थे तथा उसको विषय वासना और भोग विलास की ही वस्तु समझते हैं, उनके लिए नारी को कामिनी कहा है यदि सब नारियों के लिए ऐसा कहा होता तो क्या वे लोई जैसी घरवाली और कमाली जैसी बेटी के साथ रह पाते? कबीर तो नारी को विषय भोग की वस्तु मानने वालों के लिए ही कहते थे–

"नारी की झाई परत, अंधा होत भुजंग,
कबिरा तिनकी कौन गति, जो नित नारी के संग!"

कबीर स्वयं नारी का पूरा सम्मान करते थ। उनकी नारी सम्बन्धी धारणा थी कि नारी माया नहीं है अपितु वह जननी है, वह आद्या सृष्टि है। वही पूर्ण है। पुरुष तो उसका अंश मात्र है। स्वयं अनन्त भगवान भी स्त्रीहीन नहीं हैं। वह पुरुष की विकृत वासना ही है जो इसे देखकर केवल कामिनी देखता है और वह इसकी आत्मा के पूर्णत्व को नहीं देखता।
वे भिक्षावृत्ति का विरोध करते थे और मेहनत की कमाई पर बल देते थे। ढोंगी साधुओं और साधुता के नाम पर पलने वाली मुफ्तखोर भीखमंगो की जमात को देखकर कबीर का खून खौल उठता था। लेकिन वे परोपकार के लिए भिक्षा मांगने को बुरा नहीं मानते थे अपितु स्वयम् भी उसके लिए तैयार थे–

"मर जाऊँ माँगू नहीं, अपने तन के काज
परमारथ के कारने, मोहि नै आवै लाज।"

वह निम्न जातियों का नेता था। उस अलमस्त फक्कड़ ने सभी मानवता विरोधियों से टक्कर ली थी। उसे किसी का भय नहीं था क्योंकि वह जानता था कि रक्षा करने वाले भगवान (निर्गुण) हैं। तभी तो वे कहते हैं–

"खुल खेलो संसार में बाँध न सक्कै कोय
जाकौ राखै साइयाँ मारि न सक्कै कोय।
बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होय।"

अपराजित मानवीय चेतना का प्रतीक

कबीर से पूर्व नाथपंथ के प्रवर्तक गुरु गोरखनाथ ने योगमत के द्वारा संसार की मुक्ति का मार्ग स्थापित किया था। वह मार्ग कबीर युग तक आते–आते अपनी ही बनाई राह से विचलित हो गया था। कबीर ने उसे एक नई राह दिखाई। कबीर का अपने समय में निम्न वर्गों पर पूर्ण प्रभुत्व था। वे उसे अपना नेता और संरक्षक मानते थे।
कबीर का अपना कोई पंथ नहीं था फिर भी वह भ्रमित करने वाली साधना का निडर होकर प्रतिकार करता था। कबीर का मार्ग समन्वय का मार्ग था, जो हर प्रकार की दासता को अस्वीकृत करता था। वह उत्तरदायित्व को सम करके झेलता था, जहाँ व्यक्ति की पूर्णता थी किन्तु अपने को विनष्ट करने वाली अन्ध पराजय नहीं थी।
यह भी सत्य है कि उस समय के जनसाधारण ने उनके पथ को सहर्ष अपना लिया था। कबीर उनके लिए मुक्तिदाता के रूप में अवतरित हुआ था।
"भारतीय धर्म–साधना के इतिहास में कबीरदास ऐसे महान् विचारक एवं प्रतिभाशाली महाकवि हैं, जिन्होंने शताब्दियों की सीमा का उल्लंघन कर दीर्घकाल तक भारतीय जनता का पथ आलोकित किया और सच्चे अर्थों में जनजीवन का नायकत्व किया।"[11] उन्होंने योगियों की लूट–खसोट का कुपथ बन्द कर दिया था।
कबीर ने भी स्वीकार कर लिया था कि दीन–दरिद्र सभी उसके साथ थे और इसे देखकर रूढ़ियों और अत्याचारों का विरोध करने का उनका साहस बढ़ता ही जाता था।
कबीर के बारे में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि "हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ।"[12]

निष्कर्ष

कबीर निरक्षर थे परन्तु ज्ञान अथाह था। उदारता भी उनमें कूट–कूट कर भरी थी। कबीर जैसा मनुष्य तब तक इस देश में हुआ ही नहीं था, वह नया मनुष्य था, वह अद्‌भुत, अद्वितीय, अपराजित, अनिंद्य, महान्, निष्कलंक, बेबाक, बेखौफ़, बहुज्ञ, निडर, निर्भीक, समदर्शी, साहसी, सन्तोषी, सरल, सहृय और सात्विक था। कबीर की राह अमर थी और उसका संघर्ष अपराजित मानवीय चेतना का प्रतीक था। उसकी प्रासंगिकता वर्तमान में उतनी ही प्रकाशवान है जितनी वह कबीर–युग में थी। वह जाग्रति की मशाल युगों–युगों तक जलकर अन्धकार में भटकते मानव को सन्मार्ग दिखाएगी। वह मशाल कबीर के रक्त के स्नेह में भीगी हुई है, वह एक गरीब की इज्ज़त है, वह नीच समझी जाने वाली जातियों का बड़प्पन है, वह एक अपनढ़ का ज्ञान है, वह हारे का सहारा है, वह अन्याय का प्रतिकार है, वह अंधभक्ति पर तर्क है, वह दुतकारे हुए की अपराजित मानवीयता है, वह अमर है।

सन्दर्भ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास (सं.) डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ 143
2. कबीरः आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 28 (प्रस्तावना)
3. वही, पृष्ठ 22
4. हिन्दी वाङ्.मय का विकासः डॉ. सत्यदेव चौधरी, पृष्ठ 112
5. संत साहित्य की भूमिकाः डॉ. राजदेव सिंह, पृष्ठ 70–71
6. लोई का तानाः डॉ. रांगेय राघव, भूमिका
7. वही, भूमिका
8. कबीरः आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 128
9. वही, पृष्ठ 134
10. रांगेय राघव ग्रंथावली, भाग 10, पृष्ठ 211
11. हिन्दी साहित्य का इतिहास (सं.) डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ 143
12. कबीरः आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 170